International Journal of Information Movement Vol.5 Issue III (July 2020)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 28-33

शोषण की दास्तानें: कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' के सन्दर्भ में

डॉ. सुषमा ठाकुर
(संयुक्त प्राध्यापिका)
हिन्दी विभागाध्यक्षा
कुमारी विद्यावती आनंद डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय, करनाल (हरियाणा)
Email- sushmakva97@gmail.com

प्रेमचन्द ने समाज की वर्ण और वर्ग व्यवस्था को कठघरे में खड़ा कर अपनी बहुत सी रचनाओं में प्रश्न किया था । समाज के शोषित वर्ग–**'दलित और स्त्री'** के साथ होने वाली ज्यादतियों को उन्होंने अपनी अनेकानेक रचनाओं का विषय बनाकर तत्कालीन समाज को इस **'सामाजिक कोढ़'** के प्रति जागरूक करने का भरसक प्रयत्न किया था । स्वतन्त्रता के पश्चात् दलितों, शोषितों की व्यथा को स्वर देने वालों में एक विशेष नाम है कहानीकार ओमप्रकाश बाल्मीकि का । बाल्मीकि ने इस वर्ग की पीड़ा को अपने घर–ऑगन, अपनी गलियों, अपने आस–पड़ोस, कार्यस्थल सब जगह भोगा, जिया । उनके कहानी संग्रह **'घुसपैठिये'** में उनका स्वकथन है–''इन कहानियों की अंतर्वस्तु में अनुभव–जगत की त्रासदियों और दुखों से उपजी सामाजिक संवदेनाएँ हैं । जिन्हें शब्द–दर–शब्द गहरे अवसादों के साथ यंत्रणा से गुजरते हुए लिखा है । ×× मैंने जैसा जीवन देखा–भोगा, महसूस किया, वैसा ही लिखने की, दिखाने की कोशिश की । ''[1]

'सलाम' के बाद ओमप्रकाश बाल्मीकि का दूसरा कहानी–संग्रह आया–**'घुसपैठिये'**,जिसकी बारह कहानियों में से दस एक विशेष वर्ग से सम्बद्ध होने पर उसका खामियाजा भुगतने के अनुभव ही हैं । हम स्वतन्त्रता के बाद विदेशियों के अन्याय, शोषण से मुक्त हो गए, शिक्षित भी होने लगे, हमारा जीवन–स्तर भी उठने लगा लेकिन मानसिकता कहीं अटक कर ही रह गई, वह सरलता से अपनी संकीर्णता की सीमाओं को नहीं तोड़ पाई । स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकारों ने समाज के सब वर्गों को बराबरी पर लाने के लिए ही कुछ विशेष कानून बनाए लेकिन युगों से पोषित जड़ मानसिकता की जड़ता को पिघलने में समय लगा । यद्यपि परिवर्तन हो रहा है लेकिन ओमप्रकाश बाल्मीकि ने उस समय का जिक्र किया है जब यह प्रक्रिया शनैः शनैः जारी थी, निस्संदेह परिवर्तन को स्वीकार्यता मिलने में समय लगा, बीच का दौर और भी त्रासद रहा ।

शिक्षा के अवसर शोषण के शिकार रहे वर्गों को भी मिले, नौकरियों में स्थान भी मिलने लगा लेकिन सामाजिक स्वीकार्यता पाने में इन वर्गों को बहुत कष्टकर अनुभवों से गुजरना पड़ा । **'घुसपैठिये'** कहानी यही पीड़ा दर्शाती है । इस कहानी में दलित वर्ग के एक व्यक्ति; जो सरकारी नौकरी में हैं, उसके पास मेडिकल कॉलेज में आरक्षित सीटों पर प्रवेश प्राप्त कुछ दलित छात्र आकर अपनी पीड़ा बताते हैं, ''दलित छात्रों को अलग खड़ा करके अपमानित करना तो रोज का किस्सा है । प्रवेश परीक्षा के प्रतिशत अंक पूछकर थप्पड़ या घूँसों का प्रहार होता है । जरा भी विरोध किया तो लात पड़ती है और यह पिटाई कॉलेज या छात्रावास तक ही सीमित नहीं है । शहर से कॉलेज तक जानेवाली बस में भी पिटाई होती है । कोई एक सीनियर चलती बस में चिल्लाकर कहता है, इस बस में जो भी चमार स्टूडेंट है ... वह खड़ा हो जाए... फिर उसे धकियाकर पिछली सीटों पर ले जाया जाता है, जहाँ पहले से बैठे सीनियर लात, घूसों से उसका स्वागत करते है।''[2]... इस तरह वे बच्चे अपनी परेशानी उस अफसर से कह तो देते हैं पर अफसर और एक दलित

पत्रकार रमेश चौधरी के कई बड़े अफसरों तक गुहार लगाने पर भी कोई अपेक्षित समाधान उन्हें नहीं मिल पाता । आखिर एक दिन उन्हीं छात्रों में से एक छात्र के आत्महत्या कर लेने की खबर सुनकर अफसर सन्न रह जाता है; होता हवाता कुछ भी नहीं ।

'प्रमोशन' कहानी में भी साधारण जन की संकीर्ण मानसिकता और दलित वर्ग के एक व्यक्ति की मानसिक पीड़ा को दर्शाया गया है । स्वीपर से अकुशल कामगार के पद पर पदोन्नति पाने वाला एक युवक अति प्रसन्न होकर वह खुशी अपने परिवार से बॉटता है। वह खुश होकर मजदूर यूनियन का सदस्य बन जाता है और इंकलाब आने अथवा समाज में एक बड़े परिवर्तन के सपने देखता है । मजदूर यूनियन का मेंबर बनने की बात जब वह अपनी पत्नी को बताता है तो वह उसे सच्चाई से रू–ब–रू करवाने का प्रयास करती है लेकिन वह उसे डपट देता है । अति उत्साह के चलते यूनियन की मीटिंग के लिए पंडाल की तैयारी और मीटिंग के बाद उसे खोलने का काम भी अकेले ही कर डालता है कि पदोन्नति के कुछ ही दिन बाद अपने कार्यस्थल पर जब उसका हाथ लगा दूध कोई ग्रहण करने को तैयार नहीं होता तब उसका सपना टूटकर बिखर जाता है और उसे अहसास होता है लेकिन पदोन्नति से उसकी स्थिति में कुछ अधिक फर्क नहीं पड़ा क्योंकि जाति तो उसकी नीची ही रहेगी, हमारे समाज में सरकारों या समाज सुधारकों के सैंकड़ों प्रयासों के बावजूद उसे ऊँचा थोड़े ही किया जा सकता है । युगों से बनी लोगों की छोटी सोच को बदलाना इतना सरल नहीं है । लेखक ने कहानी का अन्त कुछ ऐसे किया है, "सुरेश अभी भी दूध की रखवाली कर रहा था । एक–एक पल उसे भारी लग रहा था । 'मजदूर–मजदूर भाई–भाई' का नारा आज उसके रक्त प्रवाह को तेज नहीं कर रहा था । उसकी ऑखों के सामने अजीब–सा अँधेरा घिर रहा था ।"[3]

समाज में अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने वाले कितनी बार गिरते हैं, निराश होते हैं, फिर उठते हैं और पुनः प्रयास करते हैं । ऐसा सदा से होता आया है, कितनों को कितनी ही तरह के बलिदान करने पड़ते हैं, कभी–कभी अपनी स्वयं की आहुति तक देनी पड़ती है, अधिकारों के यज्ञ में स्वयं समिधा बन जलना पड़ता है तब भी कुछ हाथ आ ही जाए, कतई आवश्यक नहीं । ऐसी ही कहानी–**'कूड़ाघर'** है । नायक अजब सिंह 'आरक्षण बचाबो' रैली में भाग लेने दिल्ली जाता है लेकिन वहॉ कुछ अपेक्षित नहीं हो पाता । वह निराश होकर अपने शहर लौट आता है पर आकर पता लगता है कि मकान मालिक को उसके दलित होने का पता लग गया है । (जिसे उसने जानबूझकर अथवा कुछ सोच–समझकर नहीं छिपाया था) और उसकी अनुपस्थिति में खूब हंगामा कर उसकी पत्नी को बेइज्ज़त करते हुए घर शीघ्रातिशीघ्र खाली करने की चेतावनी दे दी है । इस कहानी में बार–बार कूड़े के ढेरों का जिक्र है जो अजब सिंह को परेशान करते हैं, उसे अपने आस–पास भी वही तीखी दुर्गंध महसूस होती रहती है जो सम्भवतः हमारे सामाजिक ढॉचे में जातिगत, वर्गगत संकीर्णता, हमारे सड़े–गले जातिगत बॅटवारे वाली सोच की दुर्गंध है, जो पढ़ लिखकर, अच्छी नौकरी पाकर भी उसका पीछा नहीं छोड़ रही । "अजब सिंह ने सुमित्रा की ओर देखा । उसकी ऑखों में भय ही छाया था । अजब सिंह को लगा जैसे बदबू का तेज झोंका उसके इर्द–गिर्द अभी भी फैला हुआ है जैसे समूचा शहर एक कूड़ाघर में तब्दील हो गया है जहॉ सॉस लेना भी मुश्किल है । ×× उसे लग रहा था जैसे वह एक विशाल कूड़ेघर में मकान ढूँढ रहा है जहॉ वह ठीक से सॉस ले सके ।"[4] ... यहॉ यह 'बदबू' प्रतीक है हमारी गन्धाती सोच की जो न जाने कब बदलेगी और इंसान को बस इंसान समझने की उदारता दिखा पाएगी ।

बदलाव का एक कदम उठाती सशक्त कहानी है–**'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ'** । पड़ोसियों के रूप में पिछले पंद्रह–बीस वर्ष से साथ रहते हुए मोहनलाल शर्मा और गुलजारीलाल शर्मा अपने बच्चों का आपस में ही खुशी–खुशी विवाह करने वाले हैं । विवाह पूर्व उत्सव दोनों घरों में चल रहे हैं इसी बीच विवाह में शामिल होने आई मोहनलाल शर्मा की बहन के माध्यम से यह सच उजागर हो जाता है कि वे लोग शर्मा न होकर मिरासी हैं और गुलजारी लाल शर्मा को पता भी लग जाता है । वह मोहनलाल को घर बुलाकर उसकी बीस वर्ष की दोस्ती को परे रखकर उसे बहुत बेइज्जत करता है–''ओए मोहनलाल, तूने मुझे ही नहीं, मेरी बेटी को भी जीते जी मार दिया है ... मैं अपनी बेटी एक मिरासी को कैसे दे सकता हूँ ... ओए तू कमीना ही नहीं हरामजादा भी है... आवाज मुहल्ले भर ने सूनी थी ।''[5] बेचारी बुआ बहुत शर्मिंदा महसूस कर रही थी ''समूचे प्रकरण में बुआ की स्थिति अनचाहे मेहमान की थी । वे सोच रही थी कि उन्हें यहाँ नहीं आना चाहिए था । काफी देर खामोशी के बाद बोली–बेटा अमित, मैं यहाँ तुम लोगों की खुशियाँ बाँटने आई थी, अपनी भाभी, भाई, भतीजे–भतीजियों को देखने की इच्छा ले के आई थी ... मैं ही मूरख हूँ... मेरे मुँह से ही निकल गया उस रिक्शावाले के सामने कि हम मिरासी हैं । मुझे तो पता भी नहीं ये शरमा क्या होता है ... मैं कल अपने टब्बर कू लेके वापस चली जाऊँगी ... बुआ का गला भर्रा गया था । आँखों में आँसू छलक उठे थे ।

अमित ने बुआ को बाहों में भर लिया ।... ना बुआ, तुम्हारा दोष नहीं है । ... तुमने तो हमारी आँखें खोल दी हैं । झूठ के बन्धन कितने खोखले होते हैं, यह अब हमारी समझ में आ गया है । मिरासी होना कोई अपराध नहीं है... तुम अपनी हो ... कहीं नहीं जाओगी ।''[6] ... मोहनलाल ने सम्भवतः इस सच को जानते समझते हुए कि हमारा समाज मिरासियों को हेय दृष्टि से देखता है, उच्च वर्ग के लोग अपनी बराबरी पर उन्हें स्वीकार नहीं कर पाते, कदम–कदम पर उन्हें बेइज्जत किया जाता है; और इस सब से बचने के लिए ही अपनी पहचान छिपाई होगी लेकिन आज उसे यह करना बहुत भारी पड़ा था और अब कुछ नहीं हो सकता था । विवाह की चहल–पहल, खुशी सब खत्म हो गई ।

दूसरी ओर गुलजारीलाल शर्मा की बेटी जब सारी घटना से अवगत होती है तो पिता को याद दिलाती है कि वे भी शर्मा अर्थात् ब्राह्मण नहीं हैं, लगातार शर्मा शर्मा कहते सुनते वे भी भूल गए हैं कि वे ब्राह्मण नहीं बढ़ई है... तरखाण । इस सच को उजागर कर वह पिता से कहती है, ''पापा... आप बने रहिए श्रेष्ठ... ब्राह्मण... मिरासी से ऊँचे । लेकिन मैंने कभी भी अपने आपको ब्राह्मण नहीं माना ... यह सच्चाई है । ×× मेरे लिए ब्राह्मण होना ही इंसान की श्रेष्ठता का प्रतीक नहीं है । यह एक भ्रम है जिसमें सभी ऊँच–नीच का खेल खेल रहे हैं । आप जितना मातम मनाएँ ... मैं शादी अमित से ही करूंगी ।''[7] सुनीता का बढ़ा हुआ यह कदम कई पुरानी लेकिन खोखली मान्यताओं को ध्वस्त करता महसूस होता है । कई पीढ़ियों के संघर्ष के बाद कोई एक पीढ़ी यदि यह पहल करती है तो परिवर्तन की राह अवश्य उजली होगी ।

'दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' कहानी भी दलित वर्ग से सम्बद्ध होने का खामियाज़ा भुगतते एक नवयुवक की कहानी है जो अपने नाम की वजह से 'काबिल' होते हुए भी अपेक्षित पद को नहीं पा पाता लेकिन नाम में परिवर्तन के बाद अर्थात् अपनी पहचान छिपाकर उसी पद को सहजता से पा लेता है लेकिन एक दिन वह विवश हो जाता है । अपनी बिरादरी के पक्ष में खड़ा होने को... तब उसकी असली पहचान सामने आ जाती है और प्रतिष्ठित लोग उसे पुनः नौकरी से बाहर कर देते हैं अर्थात् बदलाव की सब आशाएँ

पुनः धूमिल पड़ जाती हैं ।

'रिहाई' पुनः शोषण की एक मार्मिक रचना है । यह शोषक और शोषित की कथा है। साधन सम्पन्न लाला रामसुखलाल अपने अवैध गोदाम की रखवाली के लिए मिट्ठन और सुगनी को वहीं नजरबन्द अवस्था में रखता है । एक बार मिट्ठन बुखार से तप रहा है और लाला उसी सर्द रात में कुछ ट्रकों के साथ गोदाम में माल लाता है और मिट्ठन को माल उतारने का आदेश देता है । सुगनी से यह जानकर कि मिट्ठन बीमार है, लाला तिलमिला जाता है और बहुत गाली–गलौच करता है । विवश होकर मिट्ठन आ जाता है पर एक भारी बोरा उसपर गिर जाता है जिसकी चोट वह सह नहीं पाता और दर्द से तड़पता और छटपटाता है । कुछ घंटें दर्द से कराहते हुए अन्ततः उसकी मौत हो जाती है। सुगनी बीमार पति के इलाज की दुहाई देते–देते ही खामोश हो जाती है । उनका इकलौता बच्चा जब यह सब देखता है तो लाला के गोदाम में आग लगा देता है । सुबह लाला दूर से उठते धुएँ को देख सन्न रह जाता है और आकर गोदाम का लोहे का मजबूत गेट खोलता है तो छुटकू एक पत्थर उसपर फेंककर अपना आक्रोश दिखाता है और गोदाम से बाहर भाग जाता है "गेट के बाहर आते ही छुटकू की नजर बाहर खड़ी मारूति पर गई । उसने आव देखा न ताव, बस हाथ का पत्थर मारूति के शीशे पर दे मारा । एक झंकार के साथ शीशा चूर–चूर होकर बिखर गया । मारूति की बिगड़ी शक्ल को देखकर लाला का रक्तचाप और तेज हो गया था । ×× लाला का रौद्र रूप देखकर छुटकू में और ज्यादा फुर्ती आ गई थी । ×× लाला ने काफी दूर तक छुटकू का पीछा किया था । लेकिन उसकी सॉस फूल गई थी । ×× गालियों का प्रलाप अभी तक जारी था । जलते गोदाम में पड़ी दो लाशें, मारूति का टूटा शीशा, लाला की हिम्मत पस्त कर गए थे । "[8] ... यह कहानी एक ओर एक पीढ़ी के शोषण सहन करते रहने की है और दूसरी ओर अगली पीढ़ी के वर्ग–संघर्ष रूपी युद्ध में उतरने की कथा कहती है । सहन करने की भी सीमा होती है, पीढ़ी–दर–पीढ़ी अन्याय और शोषण सहन करते–करते कभी तो विद्रोह का ज्वालामुखी फटना ही था ।**'ब्रह्मास्त्र'** कहानी में भी विद्रोह का यह ज्वालामुखी अपना ताप देता है। अरविन्द नैथानी नाम का युवा अपने परम मित्र कॅवल को अपनी बारात में चलने का न्यौता देता है । बैंक में कार्यरत कॅवल बहुत कठिनाई से छुट्टी ले पाता है और निश्चित दिन बारात में शामिल होने के लिए नैथानी के घर पहुॅचता है । वह बारात की बस के पायदान पर कदम रखने ही लगता है कि पंडित माधवप्रसाद भट्ट आ जाते हैं जो उससे बहुत अभद्रता से पेश आते हैं "तू अपनी औकात में रह... यह बारात टिहरी जा रही है ... और टिहरी देहरादून नहीं है ×× यह किसी डोम–चमार की बारात नहीं है ।यह नैथानियों की बारात है जो टिहरी के ऊॅचे ब्राह्मणों में जा रही है ×× जा ...अपने घर वापस । पंडित ने तेज नश्तर से कॅवल की शख्सियत को तार–तार करके रक्तरंजित करने की कोशिश की ।

कॅवल को लगा जैसे सामने खड़े माधवप्रसाद भट्ट ने गंदे नाले में धकेल दिया है । नाले की दुर्गन्ध उसके फेफड़ो में भर गई थी । उसका दम घुटने लगा था । उसने पूरी ताकत से चीखकर पंडित पर वार करना चाहा ।"[9] ... कॅवल जैसे नौजवानों की आंतरिक व्यथा और टूटन को महसूस करना निस्संदेह बहुत कड़वा अनुभव है । समाज के कितने ही नश्तर पीढ़ी–दर–पीढ़ी इन्हें चुभाए जाते रहे हैं । जब तक शोषण चुपचाप स्वीकार्य था, शायद समस्या उतनी बड़ी नहीं थी पर जब सिर उठाने की जुर्रत की गई, समस्या का रूप और भयावह हुआ और इस दौर को इनकी कई पीढ़ियों ने अपनी पूरी भयावहता के साथ

झेला, जिया ।

ओमप्रकाश बाल्मीकि के इस कहानी संकलन में दलितों के अपमान, उनके मुख्यधारा में शामिल होने की अस्वीकार्यता जैसी स्थितियॉ अधिकांश रचनाओं का विषय है लेकिन इनके साथ–साथ युगों से शिक्षा से वंचित समाज में पसरे अंधविश्वास जैसी समस्या को भी चित्रित किया गया है । **'हत्यारे'** कहानी इसी विषय को लेकर लिखी गई रचना है । गॉवों में फैला अंधविश्वास कभी–कभी कितना विकराल रूप ले लेता है और उसके दुष्परिणाम कितने डरावने हो सकते हैं, उन्हें यह कहानी बड़ी सहजता से कहती है ।

कालू नाम के व्यक्ति के घर सूअर भूना जा रहा है चूंकि पिछले कई दिन से बुखार में तपते बड़े युवा बेटे सलेसर का बुखार नहीं उतर रहा । झाड़–फूँक, तन्त्र–मन्त्र में विश्वास करने वाले भोले कहें या मूढ़; परिवार के सदस्य सूरजा भगत के चक्कर में आते हैं जो उन्हें **'पुच्छा'** देते हुए बताता है कि पीपल के प्रेत ने बेटे की यह हालत की है । सूअर की बलि देवता को देनी होगी । पिता कालू लम्बरदार से दौ सौ रूपये मॉगता है तो अपना ब्याज पहले ही काटकर एक सौ साठ रूपया लम्बरदार कालू को देता है, जिससे सूअर खरीदा जाता है, शराब की दो बोतलें ली जाती हैं; यह वही सूअर है जो कालू के घर भूना जा रहा है । शराब के साथ सूअर के पके मॉस की दावत में आस–पड़ोस वाले शामिल होते हैं लेकिन इसी बीच सलेसर की तबियत और बिगड़ जाती है, यहॉ तक कि वह अगली सुबह का सूरज नहीं देख पाता । उसकी मृत्यु से पूरे घर में कोहराम मच जाता है... और कहानी का मार्मिक अन्त बहुत देर तक पाठक के अन्तर्मन में भी गूंजता हुआ सा प्रतीत होता है । जैसे सलेसर की चीखें उसके पिता कालू के भीतर गूंजती हैं "मार डाला न मुझे.. . मार डाला तुम सबने मिलकर... मेरी हत्या की गई ... तुम हत्यारे हो ... हत्यारे... ।"[10]

अशिक्षा, मूढ़ता, बेवकूफी, अन्धविश्वास, मूर्खतापूर्ण भोलापन और उस सब के साथ तीव्र वेदना पैदा करती है ये कहानी । काश! सलेसर का इलाज सम्भव हो पाता, ऐसे ही न जाने कितने सलेसर जनता को मूर्ख बनाकर लोगों की अज्ञानता का लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करने वाले सूरजाओं ने बलि चढ़ा दिए । इस तरह की स्थितियों से बचने के लिए शिक्षा और विज्ञान का प्रचार, प्रसार बेहद जरूरी है अन्यथा देश जाति–पाति के भेदभाव, धर्म के ढकोसलों और अन्धविश्वास के गर्त में फॅसकर ही रह जाएगा ।

उपर्युक्त विषयों के साथ–साथ लेखक ने इस कहानी संग्रह में एक और विषय **'स्त्री शोषण'** को भी उठाया है । इस विषय पर उसने दो कहानियॉ लिखीं– **'यह अन्त नहीं'** और **'जंगल की रानी'** । 'यह अन्त नहीं' अपनी अस्मिता के बचाव के लिए आवाज उठाती **'बिरमा'** की कथा है जो अपने भाई और उसके दोस्तों के साथ खुले रूप में गॉव के नामी ज़मीदार तेजभान के बेटे सचीन्दर के खिलाफ आवाज़ उठाती है । क्योंकि उसने उसके साथ दुर्व्यवहार का प्रयास किया था हालांकि नामी गिरामी लोगों के विरोध में खड़ा होना इस परिवार को पूरे गॉव से अलग–थलग कर देता है पर वे हार नहीं मानते । 'जंगल की रानी' एक आदिवासी लड़की कमली और पत्रकार सोमनाथ की कथा है । दोनों शोषण का शिकार बनकर अपना–अपना जीवन गॅवा देते हैं । गरीब लेकिन कुशाग्रबुद्धि कमली किसी तरह अपनी पढ़ाई जारी रखने में सफल होती हैं । एक डिप्टी साहब स्कूल में पधारते हैं और कमली पर उनकी बुरी नज़र पड़ती है, उनका साथ देने वालों में स्थानीय विधायक भी है । किसी तरह चालाक बाज अपनी धूर्तता और बल से कमली को अपने जाल में फॅसा लेते हैं । कमली अन्तिम सॉस तक लड़कर अपनी अस्मिता की रक्षा करती है । पत्रकार सोमनाथ जब इन खलनायकों का पर्दाफाश करता है तो उस पर हमला करवा दिया जाता

है और दो दिन अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में पीड़ादायक अन्तिम सॉसें गिन कर वह भी मर जाता है । कहानी का अन्त है–"अगले दिन गान्धी चौक पर एक विशाल भीड़ को सम्बोधित करते हुए विधायक ने सम्पादक के हत्यारों को सजा दिलाने की शपथ ली थी । शहर मूक बना सब कुछ देख समझ रहा था । इसीलिए शान्त था। "[11]

जब तक शोषित शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाएगा ही नहीं, शोषण को अपना भाग्य ही बनाए रखेगा तब तक तो बदलाव की सम्भावना तक नहीं होगी लेकिन जब विरोध की आवाज़ उठेगी तो उसके 'पक्ष' और 'विपक्ष' दोनों में ही कुछ–कुछ आवाज़ें बुलन्द होंगी। सम्भव है पहले जीत अन्याय करने वालों की होती रहे लेकिन वह समय भी अवश्य आएगा जब शोषक धराशाही होंगे । समय बदल रहा है, परिवर्तन की हवा चल रही है, वह अवश्य होगा । सबको जीने के, मान–सम्मान के बराबर अधिकार अवश्य मिलेंगे ।

सन्दर्भ सूची

1. भूमिका, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 8
2. घुसपैठिये, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 16
3. प्रमोशन, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 50
4. कूड़ाघर, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 58
5. मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 64
6. मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 65
7. मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 66
8. रिहाई, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 80
9. ब्रह्मास्त्र, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 83–84
10. हत्यारे, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 95
11. जंगल की रानी, घुसपैठिये (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 100